RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : KANPUR HO/002/2022-24
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जुलाई-2022 | वर्ष - 14 | अंक : 06 | मूल्य : 5/-

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश :
सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.), मो.: 9935363730, 9170836363
योगेन्द्र कुमार (ब्यूरो चीफ चित्रकूट मण्डल) मो.: 8299162841
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN0001784

गैर-ब्राह्मणों ने गोमांस खाना क्यों छोड़ा ?

हिदुओं के विभिन्न वर्गों के खान-पान की आदत और प्रकृति और रीति उसी प्रकार स्थित और जड़ीभूत हो गई है जैसे उनके अन्य रीति-रिवाज। जिस प्रकार हम रीति-रिवाजों के आधार पर हिंदुओं को वर्गीकृत कर सकते हैं उसी प्रकार उनके खान-पान की आदतों के आधार पर भी उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। जिस प्रकार साम्प्रदायिक दृष्टि से हिंदू या तो शूद्र होते हैं या वैष्णव, उसी प्रकार मांसाहारी होते हैं या शाकाहारी।

साधारणतः मांसाहारी और शाकाहारी का यह वर्गीकरण पर्याप्त हो सकता है। लेकिन यह मानना होगा कि यह पूर्ण वर्गीकरण नही है। व्यापक वर्गीकरण के लिए हमें मांसाहारी वर्ग को दो हिस्सों में बांटना होगा।

(1) जो मांस तो खाते हैं किंतु गोमांस नहीं खाते। (2) जो गोमांस भी खाते हैं। दूसरे शब्दों में खान-पान को लेकर हिंदू समाज के तीन हिस्से होंगे। (1) ''जो शाकाहारी हैं,' (2) '' जो मांसाहारी हैं'' किंतु गोमांस नहीं खाते । (3) जो गोमांस भी खा लेते हैं। इसी वर्गीकरण के अनुरूप हिन्दू समाज के तीन वर्ग या वर्ण हैं। (1) ब्राह्मण, (2) अब्राह्मण और (3) अछूत । यद्यापि यह वर्गीकरण हिन्दू समाज के चातुर्वर्ण्य के अनुरूप नहीं है फिर भी यह विद्यमान तथ्यों के अनुरूप तो है ही। ब्राह्मणों में ही एक वर्ग है जो शाकाहारी है और अब्राह्मणों में वह वर्ग है जो मांस खाता है किंतु गोमांस नहीं खाता तथा अछूतों में गोमांस भी खाने वाला वर्ग है।

यह त्रिविध वर्गीकरण पर्याप्त है और वस्तु स्थिति के अनुसार है। कोई भी यदि इस वर्गीकरण पर ध्यान से विचार करे तो अब्राह्मणो की स्थिति उसका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करेगी ही। शाकाहारी दोनों समय में आता है। मांसाहारी होना तो समझ में आता है, लेकिन यह बात समझ में आनी कठिन है कि एक मांसाहारी केवल एक प्रकार के मांस अर्थात गोमांस के खाने में क्यों आपत्ति करें ? यह एक गुत्थी है जिसे सुलझाने की आवश्यकता है। अब्राह्मणों ने गोमांस खाना क्यों छोड़ दिया। इसे जानने के लिए इस विधान का अध्ययन आवश्यक है। तत्संबंधी विधान या तो अशोक के निर्देशों में होगा या मनु के विधान में।

हम अशोक से ही आरंभ करते हैं। अशोक के वे शिलालेख जिनका इस विषय से संबंध है तीन है। शिलालेख संख्या-1, स्तंभलेख संख्या-2 और 5, शिलालेख संख्या-1 इस प्रकार हैं :-

'' यह धर्म लेख देव प्रिय प्रियदर्शी राज ने लिखवाया है। यहां इस राज्य में राजधानी में किसी जीव को मार कर होम न किया जाए और आनन्दोत्सव न मनाया जाए, क्योंकि देवानाम प्रियादर्शी राजा में बहुत दोष देखते हैं। तथापि एक प्रकार के ऐसे उत्सव हैं जिन्हें देवानाम प्रियदर्शी राजा पसंद करते हैं। पहले राजा की पाकशाला में प्रतिदिन कई शत सहस्त्र जीव सूप (शोरबा) बनाने के लिए मारे जाते थे, पर अब से जबकि यह धर्म लेख लिखा जा रहा है केवल तीन ही जीव मारे जाते हैं (अर्थात) दो मोर और एक मृग। पर मृग का मारा जाना नियम नहीं। ये तीनों प्राणी भी भविष्य में नहीं मारे जायेंगें ''।

स्तंभ लेख संख्या-2 इस प्रकार है :-

'' देवानाम प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते हैं - धर्म (करना) अच्छा है। पर धर्म क्या है ? चित्त क्लेश की न्यूनता, बहुत से शुभ कार्य, दया, सत्य और शौच (पवित्रता) का पालन करना। ज्ञान-दान भी मैनें बहुत प्रकार से दिया। दो पायों, चौपायों, तथा जलचरों के प्रति मैंने बहुत अनुग्रह किया। यह लेख मैंने प्राण दान दिया तथा और भी अनेक प्रकार के उपकार किए। यह लेख मैंने इसलिए लिखवाया कि लोग इसके अनुसार आचरण करें और यिह चिरस्थायी रहे। जो इसके अनुसार चलेगा वह सुकृत करेगा। ''

स्तंभ लेख संख्या- 5 इस प्रकार हैं :-

'' देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा कहते हैं :- राज्यभिषेक के 26 वर्ष बाद मैंने इन प्राणियों का वध करना बंद करा दिया है, यथा सुग्गा, मैना, अरूण, चकोर, हंस, नान्दीमुख, गोलाट, जतुका (चमगादड़) कछुआ, साही, गिलहरी, बारासिंगा, वृषभ, बंदर ओकपिंड, मृग, श्वेल फाख्ता और सब तरह के वे चौपाए जो न तो किसी प्रकार उपभोग में आते हैं और न खाए जाते हैं। बकरी, भेड़ और सुअरों, गायों तथा इनके बच्चों को जो छह महीने तक के हों, मारा जाए। मुर्गों को बधिया न किया जाए। जीवित प्राणियों के साथ भूसी को न जलाया जाए। अनर्थ करने के लिए या प्राणियों की हिंसा करने के लिए वन में आग न लगाई जाए। एक जीव को मार कर दूसरे जीव को न खिलाया जाए। प्रति चार चार महीने की तीन ऋतुओं को तीन पूर्णमासी के दिन, पौष मांस की पूर्णमासी के दिन, चतुदर्शी अमावस्या और प्रतिपदा के दिन तथा प्रत्येक उपवास के दिन मछली न मारी जाए और न ही बेची जाए। इन सब दिनों में हाथियों के वन में तथा तालाबों में कोई भी दूसरे प्रकार के प्राणी न मारें जाएं। प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुदर्शी, अमावस्या या पूणिया तथा पुष्ट और पुनर्वसु नक्षत्र में और प्रत्येक चार महीने के त्यौहारों के दिन बैल बधिया न किया जाए तथा बकरा, भेड़ा, सुअर, और इसी तरह के दूसरे प्राणियों को बधिया नही किया जाए। पुण्य और पुनर्वसु नक्षत्र के दिन प्रत्येक चातुर्मास्य की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चातुर्मास्य के शुक्ल पक्ष में घोड़े और बैल को न दागा जाए।

राज्यभिषेक के बाद 26 वर्ष के अंदर मैंने 25 बार कारागार से लोगों को मुक्त किया है। ऐसा था अशोक का विधान ।

अब हम मनु पर विचार करेंगे। उसके कानूनों में मांसाहार के संबंध में निम्नलिखित व्यवस्था है :–

5.11. कच्चा मांस खाने वाले गिद्ध आदि और गांव में रहने वाले कुकूर, कबूतर आदि पक्षी का मांस न खाए। जिसके नाम का निर्देश न किया गया हो ऐसे सुमधारी घोड़े, गधे आदि भी अभक्ष्य हैं। टिटिहरी पक्षी का मांस भी वर्जित है।

5.12. गौरेया, पारिया, पपीहा, हंस, चकवा, ग्राम कुक्कुट (मुर्गा) वल्लक, बत्तख, रज्जुवल जलकाक, सुग्गा और मैना–इन पक्षियों का मांस न खाए।

5.13. कठफोड़ों और जिनके बगल झिल्ली से जुड़े हों वे जल मुर्गा, नख से विर्दीण कर खाने वाले बाज आदि और पानी में डूबकर मछली खाने वाला पक्षी, वधस्थान का मांस खाना वर्जित है।

5.14. बगुला, बलाका, द्रोणकाक, खंजन, मछली खाने वाले जल जीव (मगर आदि) ग्राम्य शूकर और सब प्रकार की मछलियां न खाएं।

5.15. जो जिसका मांस खाता है वह उसका मांस खाने वाला कहलाता है। मछली सबका मांस खाती है, जो मछली खाता है वह सब मांसों का खाने वाला है। इसलिए मछली न खाएं।

5.16. पाटीन (कुआरा) और रोहित (रोहू) मछली हव्य कव्य के लिए विहित है। राजीव, सिंहतुण्ड और शल्क वाली सब मछलियां खाद्य है।

5.17. अकेले विचरने वाले और रहने वाले सर्पादि जीवों को भक्ष्यों में कहे गए वे पशु–पक्षी जो परिचित न हों उन्हें और पंचनख वाले वानरादि प्राणियों को न खाएं।

5.18. पंचनखियों में सेह, साही, शल्यक, गोह, गेंडा, कछुआ और खरहा तथा एक ओर दांत वाले पशुओं में ऊंट को छोड़ कर बकरे आदि पशु भक्ष्य हैं ऐसा कहा गया है।

पशुओं की हत्या के बारे में अशोक और मनु के जो विधान हैं वे यहां आ गए हैं। लेकिन हमारा विषय मुख्य रूप से गो–हत्या है। अशोक के निर्देशों का विवेचन करने पर प्रश्न उठता है कि क्या गो–हत्या निषिद् ठहराई गई थी ? इस बारे में मतभेद प्रतीत होता है। श्री विसेंट स्मिथ का विचार है कि अशोक ने गोवध का निषेध नहीं किया था। अशोक के निर्देशों पर टिप्पणी करते हुए प्रोफेसर स्मिथ कहते हैं :–

'' यह बात ध्यान देने की है कि अशोक के निर्देशों में गो–हत्या का निषेध नहीं है। जो ऐसा करता है कि गो–हत्या वैध रही थी। ''

प्रोफेसर राधाकुमुद मुकर्जी, प्रोफेसर स्मिथ से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि अशोक ने गो–हत्या अवश्य बंद कर दी थी। प्रो. मुकर्जी का आधार शिलालेख 5 का हत्या वर्जन वह उद्धरण है जो सभी चौपायों पर लागू था। उनका तर्क है कि यह विचार कि गो की हत्या की छूट मिल गई थी। स्तम्भ लेख में जो कुछ कहा गया है उसका यह ठीक अर्थ नहीं है। शिलालेख में जो कथन है वह विशेषता लिए हुए है। वह सभी चौपायों पर लागू नहीं होता है। यह केवल उन चौपायों पर लागू होता है जो न तो किसी प्रकार उपयोग में आते हैं न खाए जाते हैं। गो को हम ऐसा चौपाया नहीं कह सकते जो किसी प्रकार काम में आता हो और न खाया ही जाता हो। ऐसा लगता हे कि प्रोफेसर स्मिथ का यह कथन ठीक है कि अशोक ने गो वध बंद नहीं किया था। प्रो. मुकर्जी यह कह कर जान छुड़ाना चाहते हैं कि अशोक के समय गो मांस नहीं खाया जाता था इसलिए उसकी निषेधात्मक आज्ञा गो पर भी लागू होती है। उनका कथन एकदम अनर्गल है। क्योंकि गो ऐसा पशु है जिसे सभी वर्ग के लोग खाते ही थे।

प्रो. मुकर्जी की तरह अशोक के शिलालेख के साथ खींचा तानी करके यह अर्थ निकालने की कोई आवश्यकता नहीं कि उसने गो–हत्या कानून से बंद कर दी थी मानों ऐसे करना उसका विशेष कर्तव्य था। अशोक का गो से किसी तरह का कोई खास सरोकार नहीं था और न इसे वह अपना कोई खास कर्तव्य ही समझाता था कि गो को हत्या से बचाएं। अशोक प्राणी मात्र पर, चाहे वह मनुष्य हो पशु हो, दया चाहता था।

वह मानता था कि जहां–जहां अनावश्यक रूप से पशु हत्या होती है उसे बंद कर दिया जाए। यही कारण है कि उसने यज्ञों के लिए पशु बलि का निषेध किया, जो उसने आवश्यक समझा। उसने उन पशुओं के वध को निषिद्ध ठहराया जो किसी उपयोग में नहीं आते अथवा जो खाए नहीं जाते। ऐसा पशुओं का निरर्थक वध वास्तव में अनुचित है। अशोक ने विशेष रूप से गो वध क विरूद्ध कोई कानून नहीं बनाया। यदि हम बौद्ध दृष्टिकोण समझ लें तो इस बात को लेकर अशोक पर दोषारोपण नहीं किया जा सकता।

अब हम मनु को लेते हैं। उसने भी गो हत्या के विरूद्ध कोई कानून नहीं बनाया। उन्होंने तो विशेष अवसरों पर भी मांसहार अनिवार्य ठहराया ह।

तब फिर अब्राह्मण ने गो मांसाहार क्यों छोड़ दिया? उनके इस त्याग का कोई सुस्पष्ट और सहज कारण मुझे सूझता है वह यह है कि अब्राह्मण ने ब्राह्मण की नकल करने के प्रयत्न में गोमांस खाना छोड़ा यह एक नया विचार हो सकता किंतु यह कोई असंभव बात नहीं। श्री गैब्रायल टार्दे नाम के फ्रांसीसी लेखक ने संस्कृति के बारे में लिखा है कि वह किसी निम्न स्तर के वर्ग विशेष में अपने से ऊंचे स्तर के वर्ग की संस्कृति का अनुसरण करने से फैलती है। यह नकल करना इतने धीरे–धीरे होता है और यह मशीन की तरह अपना काम इस तरह करता है जैसे कोई भी प्राकृतिक नियम। गैब्रायल टार्दे ने नकल करने के नियमों की चर्चा की। उसमें से एक यह है कि नीचे के वर्ग के लोग सदैव ऊपर के वर्ग के लोगो की नकल करते हैं। यह एक ऐसी सामान्य जानकारी की बात है कि शायद ही कोई आदमी इसके यथार्थ को अस्वीकार करे।

अब्राह्मणों में जो गो–पूजा का भाव उदय हुआ और उन्होंने जो गोमांस खाना छोड़ा, इसमें तनिक संदेह नहीं कि वह अपने ऊंचे दर्जे के ब्राह्मणों की नकल करने की प्रकृति का ही परिणाम है। वह भी सत्य है कि ब्राह्मणों द्वारा गो–पूजा के पक्ष में बहुत प्रचार कार्य किया गया है। गायत्री पुराण एक उदाहरण है। लेकिन मूलतः यह नकल करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति का ही परिणाम है। हां अब इससे एक दूसरा प्रश्न उठता है– ब्राह्मणों ने गोमांस खाना क्यों छोड़ा ?

जिन लोगो की जन–आंदोलनों में रूचि है, उन्हें.... केवल धार्मिक दृष्टिकोण अपनाना छोड़ देना चाहिए। उन्हें भारत के लोगों के प्रति सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण भी अपनाना होगा।

–भीमराव अम्बेडकर

साभार–बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाड.मय, खण्ड 14

मूलवासियों के आचार–विचार एवं संस्कार

जिस कौम की कोई संस्कृति नहीं होती उसका कोई इतिहास नहीं होता है। जिस कौम का कोई धर्म नहीं होता उसकी कोई मान्यता ही नहीं होती और जिस कौम का अपना कोई दर्शन नहीं होता उसका कोई असित्व नहीं होता। जिस कौम में उपरोक्त तीनों चीज़े नहीं होती वह अलग कौम होते हुए भी संगठन विहीन होती है और यह दूसरी कौम की गुलाम होती है।

मूलवासी हिन्दुस्तान की ऐसी कौम है जो हिन्दू मुसलमान ईसाई कौमों से अलग होते हुए भी अलग कौम की मान्यता न पाने के कारण हिन्दुओं की गुलाम है। हिन्दू विश्व में अपनी संख्या अधिक बताने के प्रयोजन से इन्हें हिन्दू कह देता हैं पर हिन्दू धर्म इनका धर्म नहीं, हिन्दू संस्कृति इनकी संस्कृति नहीं, हिन्दू दर्शन इनका दर्शन नहीं और इनकी शरीर रचना, रंगरूप और रक्त भी हिन्दू जैसा नहीं है।

एक समय था जब इन मूलवासियों को अपना हिन्दूओं से अलग सब कुछ था, धर्म या, संस्कृति थी, दर्शन था और यह एक भिन्न कौम थी। वे आर्य (हिन्दू) नहीं अनार्य हैं। सदियों पूर्व जब आर्य भारत में आये तब युद्धों में इन अनार्यों अर्थात मूलवासियों का सब कुछ छिन गया। उनका राज्य उनका धर्म उनकी संस्कृति और उनका इतिहास सब कुछ आर्यों ने युद्ध में मिटा दिया। आर्यों ने उन्हें मनुष्य से राक्षस, वानर रीछ, असम्य जंगली बना दिया। वे अपना सब कुछ भूल गये और कहीं जंगली आदिवासी बन गये, कहीं आर्यों के साथ रहकर शूद्र और नीच अछूत बन गये।

धर्म और दर्शन आंतरिक जीवन से सम्बन्धित हैं पर संस्कृति मनुष्य के ब्राह्म जीवन से सम्बन्ध रखती हैं। आचार–विचार संस्कार और त्यौहार संस्कृति के चार अंग होते हैं जिसके अनुसरण की एकता से सांस्कृतिक एकता और संगठन स्थापित होते हैं। आज तो मूलवासी समाज में संगठन की कमी है उसका कारण इसकी अपनी सांस्कृतिक अंगों का न होना ही है। इनके न कोई त्योहार है न संस्कार और न आचार–विचार । ये अपना इतिहास खो बैठे हैं इसी कारण ये हिन्दू ब्रह्मा के पादज बन गये। यही कारण है कि ये दलित, जघन्य हत्याओं के भुक्त–भोगी है और अनेक अत्याचारों से दबे हुये हैं। इन्हें कोई अपना नहीं मानता है। इन्होंने तो झूठे ही प्रारम्भ में दबाव वश (अब अंज्ञान वश) राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु जो दलितों के पूर्वजों के ही हत्यारे हैं, को देवता और भगवान मान रखा है। चूंकि दलित न हिन्दू और न मुसलमान इन्हें मन्दिर और मस्जिद में जाने का अधिकार नहीं है। जब इनकी सामूहिक हत्यायें होती हैं तो न कोई हिन्दू मुसलमान आवाज उठाता है और न दंगा करता है। गाय की हत्या हो जाये तो हिन्दू विवाद खड़ा कर देता है। मुसलमान के मस्जिद के सामने सुअर का मांस फेंक दिया जाये तो दंगा खड़ा कर देता है और शहर, प्रदेश तथा देश भर थरथराने लगता है। गाय के मरने पर देश–भर में साम्प्रदायिकता के विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगती है और सरकार हिल जाती है पर इन दलितों की दो–दो दर्जन एक ही स्थान पर सामूहिक हत्याएं

होती है तो कोई हिन्दू या मुसलमान आह भी नहीं भरता है इनकी सामूहिक लूट होती है कोई चर्चा भी नहीं करता और दर्जनों दलित महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार होता है तो किसी के कान पर जूं तक नहीं रेगती और एक हिन्दू के साथ बलात्कार हो जाता है तो सारे देश में धरना भूख हड़ताल और आन्दोलन शुरू हो जाते हैं। मुसलमान अपने धर्म भाई तथा अपने धर्म के प्रति कट्टर है। हिन्दू अपने धर्म भाई और धर्म के प्रति कट्टर है पर बेचारे दलित का कोई धर्म नहीं है इसलिए हिन्दू मुसलिम की तरह उसमें भी हत्या व बलात्कार होने पर अपने पन की चिंगारी नही उठती। यदि इसका भी अपना कोई धर्म और अपना संगठन होता तो यह हिन्दू जितने धर्म के प्रति कट्टर होते हैं मुसलमान भी अपने धर्म के प्रति कट्टर है उतने ही कट्टर होते। धर्म के कारण हिन्दू मुसलमान में एकरूपता और शक्ति है। दूसरी ओर भारत के दलितों में अपना न कोई संगठन है न एकरूपता है और न कोई शक्ति ही है। इसका कारण यह है कि न तो उनका कोई धर्म है न संस्कृति है, न आदर्श है, न कोई इतिहास। वे अपने पूर्वजों के धर्म संस्कृति और इतिहास को भूल चुकें हैं। आज उनका कोई आधार नहीं है यही वजह है कि उसमें न कोई संगठन है और न कट्टरता है। ये इतने असंगठित है कि दलितों में ही असंख्य जातियां और उपजतियां हो गई हैं यद्यापि ये जातियां हिन्दू की वर्ण–व्यवस्था की ही देन है परन्तु इसका परिणाम यह है कि ब्राह्मणवाद इन दलितों को एक नहीं होने देता है। दलितों की भांति मुसलमान भी हिन्दूओं से अलग है पर उन्होंने हिन्दुओं के जति पांत को अस्वीकार कर दिया है और वे मजहब के नाम पर संगठित है।

जितने भी दलित हैं वे सब शूद्र वर्ण में है। शूद्र वर्ण के लोग अनार्यों की सन्तान हैं इसलिए वे हिन्दू नहीं हैं। जो इन शूद्र, अछूत, दलित और आज के अनुसूचियों को हिन्दू कहता हे वह अज्ञानी ही नहीं अपितु विक्षिप्त भी है। आज इसी गलत धारणा के कारण यह वर्ग हिन्दुओं की दया, भीख और वासता की सलीव पर टंगा हुआ है। इसकी मुक्ति कठिन है। जब तक कि वह ब्राह्मणवाद वर्ण व्यवस्था जैसा जहरीला हिन्द धर्म का द्रव तथा हिन्दुशास्त्र, हिन्दु देवी–देवता को ठोकर मार मुसलमानों की तरह अपनी अलग पहचान अलग इतिहास और अलग धर्म नहीं बना लेता तब तक इस वर्ग की मुक्ति नही हो सकती।

आज भारत के मूलवासी को वह अधिकार प्राप्त नहीं है जो अधिकार हिन्दू या मुसलमान रखता है। संवैधानिक अधिकार औपचारिक एवं दिखावा मात्र है, वे तो सही अर्थ में देश के हिन्दू मुसलमान की भांति नागरिक भी नहीं है। वे दूसरे नम्बर के नागरिक है। उन्हें समाज और सवर्णों की सरकार राष्ट्रीयता की मुख्य धारा से नहीं जुड़ने देती है। उन्हें मात्र दया और सहानुभूति का कूड़ा पात्र समझा जाता है। उसे हरिजन बताकर और भी उपेक्षित कर दिया गया है। दूसरी ओर हिन्दू वर्ग का शासन प्रभुत्व, कानून अधिकार, धन, भूमि, अस्त्र शस्त्र, सब पर एकाधिकार है। इन पर ब्राह्मणवाद हावी है। मूलवासियों पर अत्याचार शोषण अपनी सीमाएं लांघ गया है। हिन्दू सवर्ण दिन–प्रतिदिन शक्तिशाली होतें जा रहे हैं और दलित और भी मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ता है तो हिन्दू नेता उन्हें देशद्रोही कहने लगते हैं जब वह अत्याचार का बदला लेने को खड़ा हो जाता है तो उसे नक्सलवादी करार देकर उसकी हत्या कर देते हैं और फर्जी मुठभेड़ दिखाकर उन्हें मार डालते हैं। यहाँ असलियत यह है कि :

'' न तड़फने की इजाजत है, न फरियाद की है
घुट – घुट के मर जाये यही मरजी सय्याद की है''

ये सब तब तक होता रहेगा जब तक दलित हिन्दू बने रहेंगे। दलितों को अपना अलग धर्म अलग संस्कृति और अलग इतिहास खोजना होगा और दासता का आदेश और आज्ञाएँ देने वाला हिन्दू धर्म त्यागना होगा जिसमें भाग्यवाद, कर्मवाद, पुर्नजन्म, देववाद, पुरोहितवाद, पत्थर पूजा हो। अवतारवाद, स्वर्ग नर्क, और ईश्वर कुछ भी हो। जिसकी नींव मानववाद पर अवस्थित हो, जिसमें करुणामयी समता और मानव के प्रति समानता का भाव हमें ऐसी संस्कृति का निर्माण करना होगा जिसमें सामाजिक आचार–विचार में न वर्ण भेद हो न जाति भेद हो, जिसमें अन्धविश्वास और पाखण्ड से दूर जीवन के संस्कारों की शुद्धता और वैज्ञानिकता हो और जिसमें ऐसे त्योहारों का स्रजन करना होगा जिनसे दलितों को प्राचीन गौरव और पूर्वजों की संस्कृति का इतिहास परिलक्षित होता है। चूंकि इस पुस्तक का धर्म संस्कृति और इतिहास मूल विषय न होकर संस्कृति के एक अंग व्रत पर्व और त्योहार ही है इसलिये हम दलितों के व्रत पर्व त्योहार का ही वर्णन करेंगे।

आचार विचार, संस्कार और त्योहार मिलाकर एक संस्कृति बनती है। चूंकि दलितों की कोई संस्कृति ही नहीं रखी गई है इसलिये ये अपने त्योहार भी भूल गये है। बल्कि भूलवश ये वे त्योहार मानने लगे हैं जो इनके ही पूर्वजों (अनार्य, द्रविड़, राक्षस, शूद्र) की दमन हत्या और पराजय की यादगार है।

बौद्ध धर्म इस देश से समाप्त हो गया इसका कारण ब्राह्मणों द्वारा बुद्ध धर्म का विरोध, बौद्धों का कत्लेआम, मद्यपान धारा का प्रादुर्भाव और युद्ध के बाद सशक्त बुद्धाचार्यों की कमी के साथ–साथ प्रमुख रूप से यह भी था कि बुद्ध ने केवल धम्म दिया था संस्कृति नही। कोई धर्म बिना संस्कृति के निर्जीव है, वह जीवित रह ही नहीं सकता है। यही कारण है कि बुद्ध के संस्कृति हीन बुद्ध का धर्म हिन्दुस्तान से मिट गया। एक बुद्धिष्ट के पास धर्म तो वृद्ध का था पर संस्कृति हिन्दू की थीं। जब धर्म मिटा तो संस्कृति रह गई और वह हिन्दू थी इसलिये सारे बौद्ध हिन्दू हो गये। संस्कृति के तीन अंग आचार–विचार। संस्कार और त्योहार में बुद्ध में आचार विचार तो दिये पर लौकिक जीवन के लिये संस्कार और त्योहार जो आवश्यक थे वह नहीं दिये। इसलिये बुद्ध धर्म मिट गया।

जब आर्यों पर हमला किया और अनार्यों को छल कपट से हराया तो सबसे पहला कार्य आर्यो ने यह किया कि अनार्यो का इतिहास मिटा दिया, उनकी संस्कृति मिटाई और उसकी जगह अपनी संस्कृति उनके ऊपर थोप दी। मजबूरन इन शूद्र अनार्यों ने हिन्दू आर्यों की संस्कृति के त्योहार अपना लिये यद्यापि ये त्योहार उन्हीं अनार्यों के पूर्वजों के हत्या, दमन, और पराजय की यादगार है। आर्य हिन्दूओं ने इस अनार्यों को शूद्र बनाकर अपने धर्म में दासता कराने के उद्देश्य से शामिल तो कर लिया पर युद्ध की वैमनष्यता और रक्त की भिन्नता को नहीं भूले वे उनको गैर समझते हुए उनसे सदैव गुलामी कराते रहे।

चिंतन और चेतना शून्य समाज निर्जीव होता है। व्रत पर्व और त्योहार संस्कृति चेतना बनाए रखते हैं और सांस्कृतिक चेतना वाली कौम ही जीवित राष्ट्र मानी है। मूलवासी एक कौम है जो न हिन्दू है न मुसलमान। इन्हें अपनी शूसुप्त संस्कृति को जगाने के लिये अपने निजी त्योहारों को गढ़ना चाहिये जिससे आपस में संगठन एकता भ्रातत्व जागेगा और निजी संस्कृति को जीवित रख सकेंगें। मूलवासियों के अपने त्योहार इस प्रकार है।

मूलवासी जाति के त्योहार

1. 26 जनवरी (संविधान दिवस) इस दिन स्वतन्त्र भारत का अम्बेडकर द्वारा बनाया गया संविधान लागू हुआ था।
2. 1 मार्च (उल्लास दिवस) रावण जयन्ती राम, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान के पुतले जलाये जाने चाहिये। और अनार्य संस्कृति की स्थापना करनी चाहिये। भाई से भाई को प्रेम करने की शपथ लेनी चाहिये।
3. 25 मार्च को हिरणाकश्यप जयन्ती। हिरणाकश्यप और होलिका की जयन्ती मनानी चाहिये। नरसिंह एवं प्रहलाद के पुतले जलाये जाने चाहिये। पुत्र को पिता की आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा लेनी चाहिये।
4. 5 अप्रैल ''जगजीवन जयन्ती'' समता दिवस के रूप में मनाना चाहिये। घर–घर में प्रवचन करना, मूलवासी वंश की कहानियाँ कहना और आम सभायें करना चाहिये। मूलवासियों की सभी अनुसूचित एवं पिछड़ी जातियों को आपस में गले मिलना और जलपान (जुहारी) की प्रथा डालनी चाहिये।
5. 14 अप्रैल (अम्बेडकर जयन्ती) चेतना दिवस इस दिन घर घर में दीप जलाकर मनाना चाहिये। घरों और गलियों में बाबा साहब के जीवन से सम्बन्धित झाँकियाँ सजाई जाये। भीम कथा का पाठ कराया जाये। सड़कों बाजारों में झाँकियों सहित जयन्ती जुलूस निकाला जाये आम सभाएँ की जायें छुट्टी रखें।
6. 15 मई (बुद्ध जयन्ती) मानवता दिवस 'गोस्पल आफ बुद्धा' तथा 'धम्म पद' के पाठ कराये जायें। ब्राह्मणवाद के पुतले बनाकर दफनायें जायें।
7. 14 सितम्बर (धिक्कार दिवस) इस दिन पूना पेक्ट की होली जलाई जाये। जगह–जगह सार्वजनिक सभाएँ की जायें।
8. 30 सितम्बर (शहीद दिवस) (रावण, हिरणाकश्यप, शंख चूड, शम्भुक, एकलव्य का शहीद दिवस मनाया जाये)। अनार्य संस्कृति की स्थापना की जाये।
9. 25 नवम्बर (ज्योतिवाफुले जयन्ती) (शक्ति दिवस) इस दिन सभायें की जायें ज्योतिवाफुले की जीवनी एवं कार्यों पर प्रकाश डाला जाये
10. 6 दिसम्बर (परिनिर्वाण दिवस) डाक्टर अम्बेडकर का निर्वाण दिवस मनाया जाये।
11. 25 दिसम्बर (रामास्वामी नायकर का निर्वाण दिवस) मनाया जाये।

(विवेक दिवस) इस दिन द्रविड़ अनार्य संस्कृति की स्थापना की जाये। रामायण की होली जलाई जानी चाहिये।

मूलवासियों के आचार–विचार

घर, परिवार, समाज के प्रति कैसा आचरण हो, पारलौकिक अवधारणा कैसी हो इसका उल्लेख इस शीर्षक में किया जायेगा। यह जीवनचर्या की नियमावली है। इसका पालन कड़ाई से किया जाना चाहिये। इसका अनुपालन न करने पर सामाजिक दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये।

1. हर पिता को अपने हर पुत्र और पुत्रों को पढ़ाना अनिवार्य हो। 4 वर्ष की अवस्था के बाद पुत्र पुत्री को स्कूल में दाखिल न कराने पर पिता का सामाजिक बहिष्कार हो।
2. एक पत्नी से अधिक विवाह आचार विरूद्ध हो।,
3. लड़का लड़की का समान सम्मान हो।
4. अपने से बड़ी उम्र के हर व्यक्ति को बिना

जांत–पांत का भेद किये श्रद्धापूर्वक अभिभावदन करना चाहिये।

5. विवाह में दहेज निषेध हो।
6. लड़के की उम्र 25 वर्ष और लड़की की उम्र 20 वर्ष होने पर ही विवाह करना चाहिये कम उम्र पर नहीं।
7. पुत्र विवाह में भोज ऐच्छिक हो और पुत्री विवाह में वर्जित हो।
8. विवाह संस्कार में प्रतिज्ञा एवं प्रमाण पत्र की व्यवस्था हो। सतपथी प्रथा वर्जित हो।
9. अभिवादन में 'जय भीम' कहना चाहिये।
10. घूंघट या पर्दा वर्जित हो। पुत्र पुत्री को पिता के तथा बहू व दामाद को ससुर के पैर छूना चाहिये।
11. अवतारवाद, पुनर्जन्म, भाग्यवाद और मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करना चाहिये। हिन्दू मन्दिरों में नही जाना चाहिये।
12. ईश्वर कोई वस्तु नहीं है उसकी अवधारणा गलत मानना चाहिये।
13. मानवता होना चाहिये।
14. चोरी, जुआ, लूट, बलात्कार, अपराधिक कर्म मानना चहिये।
15. जाति भेद, छुआछूत, ऊँच नीची, वर्ण भेद नहीं मानना चाहिये।
16. जाति के नाम पर पालागन, जुहार और राम राम नहीं करना चाहिये।
17. मैला उठाकर, चमड़ा खीचकर, धाय का काम कर, सोंर धोकर सुअर पालकर जीविका नहीं चलाना चाहिये।
18. हर व्यवसाय या पेशा करने का सबको समान अधिकार है।
19. मरे जानवर (गाय भैंस) आदि का मांस नहीं खाना चाहिये।
20. मूलवासी, शूद्र, अछूत, आदिवासी दास, नाग, अनार्य सबको द्रविड़ मानकर एक मानना चाहिये।
21. मूलवासियों को अपने को इस देश का मूल निवासी मानना चाहिये और इस देश को अपनी मातृभूमि मानना चाहिये।
22. अंगरक्षक अस्त्र अग्येयास्त्र, चाकू, तलवार सदैव रक्षायें धारण करना चाहिये।

मूलवासियों के संस्कार

1. जन्म संस्कार : इस अवसर पर बांधवों को जलपान या प्रीतिभोज कराया जाये और आदिवंश की कथा सुनाई जाये।
2. शिक्षारम्भ संस्कार यह संस्कार 4 वर्ष की उम्र पूरी करने पर छात्र को स्कूल में प्रवेश दिलाने का मानना चाहिये।
3. कार्यारम्भ संस्कार : पढ़कर घर की जिम्मेदारी संभालने या व्यवसाय अथवा नौकरी में प्रवेश करने के दिन मनाना चाहिये। (परिश्रम ही जीवन है इसका उद्देश्य है)।
4. ग्रह प्रवेश संस्कार : यह विवाह के अवसर पर मनाया जाये। विवाह में बंधन सूत्र के रूप में पत्नी के हार पहनाया जाये और पत्नी समर्पित भाव से पुष्प भेंट करें। विवाह प्रमाण पत्र जारी हो सतपथी प्रथा वर्जित है।
5. निवृत्त संस्कार : यह उस दिन मनाना चाहिये जिस दिन सेवा से निवृत्त हो या घर की जिम्मेदारी से निवृत्त हो। उस दिन समाज उत्थान को कोई कार्य अवश्य ग्रहण करें।
6. अन्तिम संस्कार : यह मृत्यु के अवसर का संस्कार है। इस अवसर पर मृतक के कार्यों की समीक्षा की जाये और उसके अधूरे कार्य पूरे करने की प्रतिज्ञा की जाये। किसी मृत्यु पर मृत्युभोज वर्जित है।

साभार – हिन्दुओं के व्रत–पर्व और त्यौहार
एम.एल. सागर

बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग

गजराज सिंह
स्नातक अध्यापक
स्वामी चन्द दास इ० कालेज हसवा, फतेहपुर
सदस्य – डा० अम्बेडकर विकास समिति फतेहपुर
मो० नं० – 09305292248

छठी शताब्दी पूर्व का काल समस्त विश्व में एक नवीन विचार धारा का काल था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक समस्त संसार में आड़म्बर, अन्याय, पाखण्ड तथा अत्याचार का बोल बाला था। यूरोप में अन्धविश्वास एवं आण्डम्बर चरम सीमा पर था। भारत इस काल में अछूता नहीं था। यहाँ पर आडम्बर यज्ञ अन्धविश्वास जातिवाद छुआछूत एवं पत्थर पूजा अपनी चरम सीमा पर थी। छठी शताब्दी में भारत में एक नवीन विचार धारा का श्री गणेश हुआ, जिसे नव जागरण या रनेशा के नाम से जाना जाता है।

भारत में धार्मिक कर्मकाण्ड एवं अन्धविश्वास के कारण समस्त समाज को कई वर्गों मे बाँट दिया गया था। ये वर्ग थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

शूद्रो की स्थिति उस समय बड़ी दयनीय थी उनसे पशुओं से बद्त्तर व्यवहार किया जाता था। उन्हें निम्न एवं अस्वच्छ पेशे अपनाने के लिए बाध्य किया गया, जिसके कारण उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक अवनति हुई। उनसे सभी अधिकार छीन लिये गये थे। भारत में ये वर्ग शूद्र पिछड़ादास, दस्यु एवं दलित आदि नामों से पुकारा गया।

भारत में छठी शताब्दी ईसापूर्व में दो विचारधाराओं का जन्म हुआ, जिसमे एक विचार धारा जैन धर्म, जिसके प्रर्वतक महावीर स्वामी थे, दूसरी विचार धारा बौद्ध धर्म जिसके प्रवर्तक गौतम बुद्ध थे। गौतम बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व कपिल वस्तु के निकट लुम्बिनी नामक स्थान पर हुआ था। इनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था इनके पिता का नाम शुद्धोधन एवं माता का नाम माया देवी था। गौतम बुद्ध बचपन से ही विचारशील एवं एकान्त प्रिय थे। बड़े होने पर गौतम बुद्ध ने देखा कि संसार मे दुःख है, इस दुःख को कैसे दूर किया जाय।

गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्य माने हैं

1. संसार दुःख मय है।
2. दुःख का कारण तृष्णा है।
3. दुःख दूर करने के उपाय है।
4. दुःख दूर करेनके लिए अष्टागिक मार्ग है।

बुद्ध ने संसार के दुःख को दूर करने का एक मार्ग अष्टांगिक (मध्य मार्ग) बताया। अष्टांगिक मार्ग के आठ साधन हैं। ये मार्ग सरल, मानवता पूर्ण, व्यवहार के नियम हैं।

बुद्ध ने निम्न अष्टांगिक मार्ग बताये :–

1. सम्यक् दृष्टि
2. सम्यक् संकल्प
3. सम्यक् वाणी
4. सम्यक् जीविका
5. सम्यक् कर्म
6. सम्यक् स्मृति
7. सम्यक् व्यायाम
8. सम्यक् समाधि

1. सम्यक् दृष्टि : बुद्ध ने सर्वप्रथम सम्यक् दृष्टि की व्यवस्था की है, जो अष्टांगिक मार्ग में प्रथम और प्रधान है। बुद्ध के अनुसार सम्यक् दृष्टि मनुष्य को बन्धन मुक्त कर सकती है। इसका उद्देश्य अविद्या का विनाश है। अविद्या का अर्थ है कि आदमी दुख को न जान सके, आदमी दुख के निरोध के उपाय को जान सके, आदमी सत्य को जान सके। सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी मिथ्या विश्वास से मुक्त हो, कर्मकाण्ड को व्यर्थ समझे, शास्त्रो की पवित्रता की विचारधाराओं से मुक्त हो। सम्यक् दृष्टि का मतलब है कि आदमी मिथ्याधारणाओं से मुक्त हो, आदमी का मन स्वतन्त्र हो, विचार स्वतन्त्र हो, उसको सही बात का ज्ञान हो। पाखण्ड, कर्मकाण्ड एवं बाहय आडम्बरों को पहचाने एवं उनसे मुक्त रहें।

2. सम्यक् संकल्प : बुद्ध के अनुसार आदमी की आशाएं, विचार, आकांक्षाएं उच्च स्तर की हो, निम्न स्तर की न हो हमारे योग्य हो, अयोग्य न हो। जिसमें सभी का कल्याण हो सके।

3. सम्यक् वाणी : बुद्ध के अनुसार मनुष्य 1. सदैव सत्य बोले, 2. असत्य न बोले, 3. दूसरों की बुराई न करे, 4. दूसरों की झूठी अफवाह न फैलाए, 5. किसी के प्रति कठोर वचनों का व्यवहार न करें, 6. सभी के साथ विनम्र वाणी का व्यवहार करें, 7. व्यर्थ, मूर्खता पूर्ण बाते न करें, बल्कि आदमी की वाणी बुद्धि संगति हो, सार्थक हो और साउद्देश्य हो।

4. सम्यक् जीविका : संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन चलाने के लिए, जीविका अर्जित करता है। बुद्ध के अनुसार जीविका प्राप्ति के ढंग अलग–अलग है कुछ बुरे ढंग से दूसरों को हानि पहुचाकर अपनी जीविका अर्जन करते हैं। कुछ अच्छे ढंग से जीविका चलाते हैं अर्थात् किसी को कोई हानि पहुचाये बिना अन्याय तथा गलत तरीके से अपनी जीविका नही चलाते। बुद्ध के अनुसार किसी को कष्ट पहुचाये बिना, जीविका अर्जन सम्यक् जीविका है।

5. सम्यक् कर्म : मनुष्य को ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे दूसरे व्यक्ति की भावनाओं और अधिकारों को ठेस न लगे, मनुष्य को दूसरों की भावनाओं का ख्याल रखना चाहिये।

6. सम्यक् स्मृति : सम्यक् स्मृति का मतलब है हर बात पर ध्यान देना, यह मन की सतत् जागरुकता है। मन से अकुशल विचार उठते हो, उन विचारों को या बुरे विचारों को मन में न उठने देना ही सम्यक् स्मृति है।

7. सम्यक् व्यायाम : सम्यक् व्यायाम अविद्या को नष्ट करने की प्रथम सीढ़ी है। सम्यक् व्यायाम के चार उद्देश्य है। 1. अष्टांगिक मार्ग विरोधी चित प्रवृत्त्यिों की उत्पत्ति को रोकना 2. ऐसी चित प्रवृत्तियों को दबाना जो उत्पन्न हो गई है। 3. ऐसी चित प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना जो अष्टांगिक मार्ग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयाक हो। 4. अच्छी चित प्रवृत्तियों में और अधिक वृद्धि करना और उनका विकास करना।

सम्यक् व्यायाम द्वारा शारीरिक मानसिक बौद्धिक विकास होता है। इसके द्वारा एक नवीन ऊर्जा का प्रवेश होता है, शरीर में रोग एवं बुरे विचारों से लड़ने की शक्ति उत्पन्न होती है मन से शुद्धता तथा शरीर निरोग रहता है।

8. सम्यक् समाधि : अष्टांगिक मार्ग की पांच बाधाएं है। ये लोभ, द्वेष, आलस्य, विचिकित्सा, अनिश्चय। इन से बचने को मुक्ति हो यह मार्ग है समाधि, जिसका अर्थ है एकाग्रता, मन की शान्ति।

शूद्र और दास

पिछले अध्याय में यह सिद्ध हो गया है कि पाश्चात्य सिद्धांत कितने निराधार हैं। अब उस सिद्धांत को लेकर एक ही भाग शेष रह जाता है – शूद्र कौन थे ? श्री ए.सी. दास का कथन है :–

'' दास और दस्यु या तो वनवासी थे या वैदिक आर्य जाति से भिन्न आर्य आदिवासी थे। उनमें से जो युद्धबंदी हुये उन्हें संभवतः दास बना कर शूद्र जाति बना दिया गया।''

अन्य एक वेदविज्ञ और पश्चिमी देशों के लेखकों के विचारों के समर्थक श्री काणे का विचार है :– परवर्ती साहित्य में दास का अर्थ खेतिहर दास या केवल मजदूर दास होता है। इसका अभिप्रायः यह है कि ऋग्वेद के अनुसार दासों ने आर्यों का प्रतिरोध किया और फिर वे निरंतर युद्ध में पराजित हुये और उन्हें आर्यों की सेवा करने को विवश होना पड़ा। मनुस्मृति (8.4.13) में उल्लेख है कि शूद्रों को ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा के लिये ही बनाया है। तैत्तिरीय संहिता, तैत्तरीय ब्राह्मण और अन्य ब्राह्मण ग्रंथों में शूद्रों की स्थिति ऐसी ही बतायी गई है जैसे स्मृतियों में है। इसलिये यह मानना होगा कि दास अथवा दस्यु आर्यों द्वारा पराजित हुये और कालांतर में शूद्र जाति में परिवर्तित हो गये।

इस मत के अनुसार दास और दस्यु ही शूद्र हैं। साथ ही शूद्र अनार्य थे और वे भारत की प्राचीन सभ्यता की आदिम जाति थे। इसी विचार का हम विश्लेषण करेंगे।

प्रथम बात भी दो प्रकार की है। पहला विचार है कि दास और दस्यु एक ही हैं और दूसरा विचार यह है कि दास और दस्यु ही शूद्र हैं। पहला विचार कि दास और दस्यु एक ही हैं, संदिग्ध है। ऋग्वेद में उनके संबंध में पाये जाने वाले वृतांत निर्णायक नहीं हैं। कुछ स्थानों पर दासों और दस्युओं के संबंध में किये गये वर्णनों में ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें कोई अंतर नहीं है। शाम्बर, भूषण, वृत्र और पिप्रू का दास और दस्यु दोनों अर्थ में वर्णन है। दास और दस्यु ही इन्द्र और अन्य देवों के विशेष रूप से अश्विनी कुमारों के शत्रु माने गये हैं। ऐसा ही वर्णन मिलता है कि इन्द्र और देवों ने इन दोनों के नगरों को ध्वस्त कर दिया। दासों और दस्युओं की पराजय से समान प्रभाव पड़ा। अर्थात प्रकाश का उदय और जल की मुक्ति। दभिति की मुक्ति का वर्णन करते हुये दास और दस्यु दोनों का वर्णन एक साथ किया गया है। एक स्थान पर कहा गया है कि दाभिति के दासों से छुड़ाया गया है और दूसरे स्थान पर दस्युओं से छुड़ाया गया बताया गया है।

उपरोक्त वर्णनों से ज्ञात होता है कि दास और दस्यु एक ही थे। जबकि अन्यत्र दानों का पृथक–पृथक वर्णन है। ऋग्वेद में ''दास'' शब्द 54 बार तथा दस्यु शब्द 78 बार व पृथक–पृथक आया है। इसके यह तथ्य प्रकट होता है कि दोनों भिन्न थे, क्योंकि यदि दोनों भिन्न नहीं थे तो फिर इनके वर्णन में भिन्नता क्यों है? संभावना यह है कि दोनों पृथक–पृथक समुदाओं या जातियों के थे।

जहां तक शूद्रों का प्रश्न है यह कहना कि वे भी दासों और दस्युओं की जाति के थे, निराधार है। शूद्र शब्द की व्याख्या करने पर शुक (शोक) और (विजित) मिलकर शोक से विजित अर्थ निकलता है। इस संबंध में वेदांत सूत्र (1.3.34) में जनश्रुति की कथा है। इसमें राजहंसों द्वारा उनके विषय में घृणास्पद वर्णन किये जाने से वे शोकग्रस्त हो गये। विष्णु पुराण में भी इसी प्रकार की कथा है।

उपरोक्त वर्णन कितने प्रमाणित हैं ? शूद्र शब्द का मूल स्वतंत्र शब्द न होकर व्युत्पत्ति किया हुआ मानना शब्दों की अनुचित व्याख्या करना है। ब्राह्मणवादी लेखक मिथ्या या झूठ शब्द गढ़ने में प्रवीण है। ऐसा कोई भी शब्द नहीं जिसकी व्युत्पत्ति वे भिन्न प्रकार से प्रस्तुत न कर सकें। प्रोफेसर मैक्समूलर ने ब्राह्मणवादी लेखकों के द्वारा उपनिषद शब्द की भिन्न–भिन्न प्रकार की व्युत्पत्ति के संबंध में कहा है :–

'' उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति को चतुराई से विपरीत व्याख्या के ढांचे में इस प्रकार गढ़ा गया है कि यह देशी छात्र की समझ से बाहर रहे। किसी भी शब्द के प्रचलित अर्थ जो किसी अर्द्धशिक्षित की समझ में भी आ जायें तो ही उन्हें व्युत्पत्ति का आधार बनाना चाहिये। इस व्युत्पत्ति में आरण्यक शब्द नहीं आता और इसका संबंध उपनिषद शब्द से न होते हुये भी सामान्य अर्थ में सटीक बैठता है।''

यही बात वेदांत सूत्र और वायु पुराण के ''शूद्र'' शब्द के संबंध में प्रकट होती है, जिसमें शूद्र का अर्थ शोक ग्रस्त लोग स्थापित किया गया है। अतः इस अर्थ को हमें निरर्थक और मूर्खता मान कर अस्वीकृत कर देना होगा।

इस कथन के संबंध में हमारे पास प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं कि शूद्र एक कबीले या वर्ग की व्यक्तिवाचक संज्ञा है। यह शब्द किसी प्रकृति का प्रतीक नहीं है जैसा कि कहा गया है।

इस कथन के पक्ष में विभिन्न साक्ष्य मौजूद हैं। सिकंदर के आक्रमण के समय भारत आये इतिहासकारों ने कई स्वतंत्र गणराज्यों का उल्लेख किया है जिनसे सिकंदर को लोहा लेना पड़ा। ऐसे कई स्वतंत्र और प्रभाव सपन्न गणराज्य थे। निस्संदेह इन कबीलों को कई नामों से जाना जाता था। इनमें से एक सोद्री भी था। यह काफी विख्यात कबीला था जिसमें सिकंदर का सामना किया। यद्यापि वह उससे पराजित हो गया था। इसे प्राचीन शूद्रों के रूप में मानने वाले बहुत कम हैं। पतंजलि ने अपने महाभाष्य के श्लोक 1,2,3 में शूद्रों के उल्लेख किया है और उनका संबंध ''आभीरों'' से बताया है। महाभारत के सभा पर्व के 32वें अध्याय में एक शूद्र गणराज्य का उल्लेख है। विष्णु पुराण, मारकण्डेय पुराण और ब्रह्म पुराण में भी इसे अनेक कबीलों के समान एक कबीला बताया गया है और उन्हें विंध्याचल के दक्षिणी भाग का निवासी कहा है।

अब दूसरी बात पर आते हैं और उसके विभिन्न पक्षों का निरूपण करते हैं। इस विषय में दो तथ्य हैं। पहला है, क्या दस्यु और दास शब्दों का प्रयोग अनार्य कबीलों की किसी जाति का सूचक है ? दूसरी बात यह है कि मान भी लें कि ऐसा है तो क्या यह स्वीकार करने का कोई अन्य कारण भी है कि वे भारत की मूल जन जाति थे ? जब तक इन दोनों का सकारात्मक उत्तर नहीं मिल पाता, तब तक दस्यु और दासों को शूद्र नहीं कहा जा सकता।

जहां तक दस्युओं का प्रश्न है ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि उन्हें अनार्य जाति के रूप में माना जा सकता है। दूसरी ओर इस निष्कर्ष के पक्ष में ऐसे ठोस प्रमाण मौजूद हैं कि दस्यु शब्द उन लोगों के लिये प्रयोग किया गया है जो आर्यों के धर्म का पालन नहीं करते थे। इस संबंध में महाभारत के शांति पर्व के 65वें अध्याय का 23वां श्लोक देखा जा सकता है।

दृश्यन्ते मानुषे लीके सर्ववर्णेषु दस्यवः।
लिंगान्तरे वर्तमाना आश्रमेषुचतुर्ष्वपि।।

अर्थात ''सभी वर्णों और सभी आश्रमों में दस्यु विद्यमान है।''

यह कहना कठिन है कि दस्यु शब्द का मूल क्या है ? किंतु एक विचार है कि वह भारतीय आर्यों द्वारा भारतीय आर्यो द्वारा भारतीय ईरानियों के लिये कथित ''अपशब्द'' हैं यह अस्वाभाविक या अप्रासंगिक भी नहीं है क्योंकि इतिहास में दोनों के मध्य हुई संघर्ष का वर्णन मिलता है। इसलिये यह बिल्कुल संभव है कि भारतीय आर्यों ने अपशब्द के रूप में इस शब्द का अपने शत्रुओं के लिये प्रयोग किया होगा और यह वास्तविकता है। अतः दस्यु भारतीय मूलवंश के नहीं हो सकते।

दास शब्द के संबंध में प्रश्न उठता है कि क्या '' जैड़ अवैस्ता'' में उल्लिखित ''अजि दाहक'' का ''दास'' से कोई संबंध है। अजिदाहक समास है इसके दो पद हैं। इसके अन्वय करने पर अजि का अर्थ सर्प और दाहक के मूल दाह का अर्थ डंक मारना है। ''अजिदाहक'' का अर्थ है डंक मारने वाला सर्प। भारतीय ईरानियों में '' जोहक'' एक व्यक्तिवाचक संज्ञा है। यह शब्द यश्ट साहित्य में बहुत स्थानों पर प्रयोग किया गया है। कहा जाता है कि ''जोहक'' ने बेबीलोन में सुंदर महल और वैधशाला का निर्माण कराया था। शक्तिशाली शैतान के प्रधान अंगार मैन्यू ने अजिदाहक को विश्व की पवित्रता नष्ट करने के लिये उत्पन्न किया और इस अजिदाहक ने भारतीय ईरानियों के सम्राट यिमा को युद्ध में परास्त कर मार डाला।

यिमा को अवेस्ता में क्षेता कहते हैं जिसका अभिप्राय प्रकाशमान अथवा शासक से हैं इसके मूल 'क्षि' के दो अर्थ हैं (1) प्रकाशित रहना (2) शासन करना। यिमा को हवांथवा भी कहते हैं जिसका अर्थ है, बड़े समुदाय का अधिकारी। यह अवेस्ता का यिमा क्षेता फारसी भाषा में जमशेद हो गया। विवांधवंत का पुत्र जमशेद ईरानी इतिहास में फारसी सभ्यता के विकास का महान नायक हुआ। यह येश्दियद्यान वंश का सम्राट था। यासना 9 और 5 (कोयमा याशी) में कहा गया है कि विवंश ही प्रथम मनुष्य था जिसने हशमा (सक ससमा) को भौतिक जगत में लाकर घेरा डाल दिया और वरदान प्राप्त किया। इससे उसे 'यिमा' पुत्र की प्राप्ति हुई जो मनुष्यों में सूर्य के साथ प्रकाशमान था और उसके साथ अमरत्व प्राप्त मनुष्य, पशु, पक्षी, फल और सदाबहार पेड़, पौधे उत्पन्न हुये। यिमा को व्यक्तित्व दैवी या कभी न मुरझाने वाला सदैव ताजगी से परिपूर्ण था। उसके राज्य में न अधिक ठंड पड़ती थी और न गर्मी पड़ती थी और न ही जरावस्या, मृत्यु एवं अस्वस्थता किसी को सताती थी।

क्या जिंद अवेस्ता का दाहक ही ऋग्वेद का दास है ? यदि नामों की समानता को साक्ष्य मानकर चलें तो निश्चित रूप से दास और दाहक एक ही है। संस्कृत के दास शब्द का अवेस्ता में दाह होना स्वाभाविक है। फारसी में साधारण रूप से संस्कृत का 'स' 'ह' हो जाता है। ऋग्वेद के दास और जिंदा अवेस्ता के दाहक में शब्दों की समानता का ही एक मात्र प्रमाण प्रस्तुत किया जाये तो इसे केवल अटकलबाजी ही कहा जा सकता है। यासना हा 9 (हार्न याशे की भांति) अजिदाहक के तीन मुंह, तीन सिर और 6 आंखों का वर्णन (ऋग्वेद 10.99.6) में दास के भी तीन सिर और 6 आंखे बताई गयी। इसके साथ ही यदि उपरोक्त के अनुसार दास और दाहक एक माने जाते हैं तो दास भारत के मूल निवासी प्राचीन आदिवासी सिद्ध नहीं होते।

क्या वे असभ्य बनवासी थे ? ऋग्वेद से प्रमाणित होता है कि दास और दस्यु आदिम जाति नहीं थे। वास्तव में वे भारतीय आर्यों की अपेक्षा अधिक सभ्य और शक्तिशाली थे। श्री आयंगर ने लिखा है

''दस्यु नगरों में रहते थे (ऋग्वेद 1.5.3.8.1, 1.103.3) और उनके अपने सम्राट थे जिनका विवरण मिलता है। उनके पास गौ, घोड़े और रथों (2–15.4) के रूप में बहुत धन था (8.40.6)। एक सौ फाटकों वाले नगर थे x.(99.8)। इन्द्र ने उनकी समस्त संपत्ति लेकर अपने भक्त आर्यों को दे दी, (1.176.4)। दस्यु धनी थे (1.33.4)। मैदानों और पर्वत शिखरों पर उनकी निजी संपत्ति थी (60.69.6.)। उनकी वेशभूषा स्वर्ण रत्न जटित होती थी (1.33.8)। वे अनेक दुर्गो के स्वामी थे (1.33.13,8.17.18)। दस्यु असुर और आर्य देवगण समान रूप से स्वर्ग, रजत और लौह दुर्गो में रहते थे (सं.रा. 6.23) अथर्ववेद 5.28.9 ऋग्वेद (2.20.8)। इन्द्र ने अपने उपासक दिवोदास की प्रार्थना को ठुकराते हुये दस्युओं के पत्थर के सौ दुर्गों को ध्वस्त कर दिया। (5.30.20)। जहां आर्यों के पशु बंद थे पत्थरों के उन कारागारों को बृहस्पति ने तोड़ दिया (4,67,3)। दस्युओं के पास आर्यों के समान रथ थे, जिन पर आरूढ़ होकर उन्होंने युद्ध किया (8.24. 27., 3.30.5, 2.15.4) ''।

दास और दस्यु शूद्रों के सामन थे। यह सिद्धांत

अनुमान पर आधारित प्रतीत होता है। यह कपोल कल्पना मात्र हैं यह केवल इसलिये बर्दाश्त कर लिया गया, क्योंकि जिनकी यह मान्यता है वे सम्मानित विद्वान हैं। जहां तक साक्ष्य का प्रश्न है इसका कोई भी अंश साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया सकता। जैसा कि पहले कहा जा चुका है दास और दस्यु के अर्थ में नहीं। उपरोक्त तथ्यों को देखते हुये यह सिद्ध करना किसी के लिये भी दुष्कर है कि दास और दस्यु अन्य वैदिक साहित्य में लुप्त हो गये हैं। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि वैदिक आर्यो द्वारा ये विलीन कर दिये गये। किंतु शूद्र के साथ ऐसा नहीं हुआ। वरन् बाद के वैदिक साहित्य में इसकी भरमार है। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि शूद्र दास और दस्यु के भिन्न थे।

क्या शूद्र अनार्य थे ? काणे का कथन है :–

'' शूद्र और आर्य के मध्य ब्राह्मण साहित्य और धर्मशास्त्रों में भी स्पष्ट विभाजन रेखा मिलती है। तांडय ब्राह्मण में शूद्रों और आर्यो के मध्य छद्म युद्ध का वर्णन हैं। इसे इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता था कि आर्य ही विजयी रहें। आपस्तम्ब धर्म सूत्र (1.1.3. 40–41.) में वर्णन है कि ब्रह्मचारी भिक्षा मांग कर लाये हुये समस्त खाद्य पदार्थ को यदि न खा सकें तो वह शेष को किसी आर्य के समीप रख दें या अपने गुरू के किसी दास (सेवक) जो शूद्र हो, उसे दे दें। इसी प्रकार गौतम धर्म सूत्र (10.69) में शूद्र के लिये अनार्य शब्द प्रयुक्त हुआ है।''

शूद्र और आर्य के मध्य सीमा रेखा खींचने के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक निरीक्षण करना होगा। शूद्र अनार्थ थे इस तर्क को बल प्रदान करने के लिये निम्न कथन द्रष्टव्य है :–

''अथर्ववेद (4.20.4.) सहस्र आंख वाला देव इस पौधे को मेरे दायें हाथ पर रख दें। मैं इसके द्वारा शूद्रों और आर्यों दोनों में से प्रत्येक को देखता हूँ।''

कथक संहिता (34.5.) ''शूद्रों और आर्य चमड़े के लिये झगड़ा करते हैं। देव और असुर सूर्य के लिये झगड़े। देवों ने विजय प्राप्त कर सूर्य को पा लिया। (शूद्रों के साथ झगड़े में) आर्यों की विजय हुई। आर्य वेदी (पूजा स्थल) के अंदर प्रवेश कर गये और शूद्र बाहर हो गये। सूर्य की भांति आर्यों की चमड़ी श्वेत वर्ण की हो गई।''

वाजसनेयी संहिता (23.30.30) – '' जब एक हिरण खेत में जौ की फसल खाता है तो खेत का मालिक उस पृष्ठ हिरन से उसी प्रकार प्रसन्न नहीं होता जैसे आर्य स्त्री के शूद्र की प्रयसी होने से (उसका पति) प्रसन्नता की अनुभूति नहीं करता।''

जैसे खेत में हिरण के जौ की फसल खाने पर (खेत का मालिक) उसके पृष्ठ होने पर प्रसन्न नहीं होता जैसे आर्य स्त्री के शूद्र की प्रयसी होने से (उसका पति) प्रसन्नता की अनुभूति नहीं करता।''

जैसे खेत में हिरण के जौ की फसल खाने पर (खेत का मालिक) उसके पुष्ठ होने पर प्रसन्न नहीं होता। उसी प्रकार शूद्र पुरुष किसी आर्य स्त्री को अपनी प्रयसी बनाए तो (आर्य पति) प्रसन्न नहीं होता। ये ऋचाएं जिनमें शूद्र और आर्य पृथक–पृथक बताए गए हैं और शूद्रों को अनार्य कहे जाने वाले विचारों का विरोध किया गया है। अतः उनसे किसी परिणाम का पहुंचना तर्कसंगत नहीं होगा। मस्तिष्क में दो विचार धारण करने होंगे – प्रथम यह कि पूर्व कथन एवं ऋग्वेद के साक्ष्य के अनुसार आर्यों की दो श्रेणियों थीं – ''वैदिक'' और दूसरी ''अवैदिक'' । इस तथ्य के आधार पर एक श्रेणी के आर्य के लिए दूसरी श्रेणी वाले को आर्य कहना सरल होगा। यद्यपि दोनों एक दूसरे से भिन्न और विपरीत थे। इस प्रकार के वर्णन से कि शूद्र आर्यों के विरोधी थे, यह तात्पर्य नहीं निकलता कि शूद्र आर्य नहीं थे। वास्तविक रूप से वे भिन्न वर्ग या समूह के आर्य थे।

हिंदूओं के पवित्र ग्रंथों से यह प्रमाणित होता है

1. अथर्ववेद (19.32.8) – ''हे दूर्वा (घास)'' मुझे ब्राह्मणों, राजन्यों, क्षत्रियों शूद्रों और आर्यों का तथा उनका जिन्हें हम प्रेम करते हैं एवं प्रत्येक वह जो देख सकते हैं उनका प्रिय बना दो।''
2. अथर्ववेद (19.62.1) – ''मुझे देवों, राजपुरुषों तथा उनका जो शूद्रों और आर्यों को देख सकता है प्रिय बना दो।''
3. वाजसनेयी संहिता (1.18.48) – (हे अग्नि) मुझे ब्राह्मणों, राजाओं, वैश्यों और शूद्रों जैसा तेज दो। मुझे अधिकाधिक तेज दो।''
4. वाजसनेयी संहिता (20.17.) – ''जो पाप हमने गांव में, जंगल में, सभा में अपनी जानकारी से शूद्रा अथवा आर्यों से किया हो, जो भी पाप हम में (दोनों, यज्ञ कराने वाला और उसकी स्त्री) से किसी ने अपने कर्तव्य के दौरान (दूसरों के प्रति) किया हो उसे नष्ट कर दो।''
5. वाजसनेयी संहिता (18.48) – ''जैसे मै जनता, ब्राह्मणों, राजाओं, शूद्रों, आर्यों को वे अपने निजी शत्रुओं को आर्शीवाद देता हूं। वैसे ही देवों व दक्षिणा देने वालों का इस लोक में प्रिय बनूं। मेरी यह अभिलाषा स्वीकृत हो। मेरा शत्रु मेरे अधीन रहे।''

उपरोक्त कथनों से क्या स्पष्ट होता है ? प्रथम में तो आर्यों और ब्राह्मणों में अंतर स्पष्ट होता है। क्या यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण आर्य नहीं थे। दूसरे कथन में शूद्रों के लिए प्रेम और सद्भावना की कामना की गई है। यदि शूद्र मूलवंशीय अनार्य होते तो क्या इस प्रकार की कामना हेतु प्रार्थना संभव होती? इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि शूद्र अनार्य थे।

धर्म सूत्र शूद्रों को अनार्य बताते हैं और वाजसनेयी संहिता शूद्र स्त्रियों पर आक्षेप करती है। ये व्यर्थ की बातें हैं। धर्म सूत्रों की व्याख्या के संबंध में दो तर्क हैं – प्रथम धर्म सूत्र तथा अन्य ग्रंथ शूद्रों के विरोधियों द्वारा रचित हैं। अतः इनकों प्रमाण के रूप में नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह है कि इन ग्रंथों में दिए गए विवरण तर्कहीन हैं तथा अन्य पुस्तकों में दिए गए विचारों के विपरीत हैं।

धर्म सूत्रों के अनुसार शूद्र उपनयन संस्कार का अधिकारी नहीं है जबकि गणपति संस्कार के अनुसार उसे इसका अधिकार है।

धर्म सूत्र शूद्र को वेदाध्ययन का पात्र नहीं मानते । किंतु छान्दोग्योणानिषद (6–1–2) की कथा है – जनश्रुति को रैक्व ने वेदाध्ययन कराया। इससे बढ़ कर यह बात है कि कवश ऐलूश ऋषि शूद्र थे। उपरोक्तानुसार और ऋग्वेद के दसवें मंडल में उनके द्वारा रचित अनेक मंत्र हैं।

धर्म सूत्र कहते हैं कि शूद्र वैदिक उत्सवों और यज्ञ में सम्मिलित होने का अधिकारी नहीं है। पूर्व मीमांसा के रचियता जैमिनी ने बदरी नामक एक अध्यापक के विषय में (जिसकी रचनाएं नष्ट हो गई हैं) में कहा है कि वह अंतिम मीमांसा शास्त्री है। बदरी के अनुसार शूद्र वैदिक यज्ञ कर सकते हैं। भारद्वाज श्रोत सूत्र (5.28) के अनुसार शूद्र यज्ञ में तीन अग्नि प्रज्जवलित कर सकता है। इसी प्रकार कात्यायन श्रोत सूत्र (1.4.16) के टीकाकार के अनुसार शूद्र वैदिक संस्कारों का अधिकारी है। धर्म सूत्र का कहना है कि शूद पवित्र सोमरस पान करने का अधिकारी नहीं है, जबकि अश्विनी कुमारों की कथा के अनुसार अश्विनी कुमारों ने सुकन्या नामक युवती को स्नान करते समय नग्नावस्था में देखा। वह च्यवन ऋषि की पत्नी थीं जो इतने वृद्ध थे कि आज मरे कल मरे। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर उन्होंने कहा कि हम में से किसी को अपना पति चुन लो। अपना सौंदर्य इस प्रकार नष्ट न करो। सुकन्या ने पतिव्रत धर्म को ध्यान में रखते हुए उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। अश्विनी कुमारो ने पुनः सुकन्या को विचलित करने का प्रयास करते हुए उसके सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे देवताओं के चिकित्सक हैं और उनके पति को युवा और सुंदर बनाने की क्षमता रखते हैं। अतः वह उनमें से किसी को पति के रूप में स्वीकार करे। सुकन्या अपने पति च्यवन के पास गई और अश्विनी कुमार की शर्तों के विषय में उनकी अनुमति मांगी, च्यवन ने कहा, ''ऐसा ही करो। शर्त के अनुसार च्यवन ने युवावस्था और सौंदर्य प्राप्त किया। यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अश्वनी कुमार सोमरस पान के अधिकारी थे। च्यवन ने प्रसन्न होकर इन्द्र से अश्विनी कुमारों को सोमरस देने का आग्रह किया। इन्द्र ने यद्यपि अश्विनी कुमारों के शूद्र होने के कारण सोमरस देने में आनाकानी की किंतु च्यवन ने इन्द्र को समझा बुझा कर सोमरस दिलवा दिया।''

इस कथन के विरूद्ध भी स्पष्ट साक्ष्य है कि धर्म सूत्रों ने शूद्रों को अनार्य घोषित किया है और कहा है कि इन्हें स्वीकार नहीं किया जाए। सर्वप्रथम यह मनु के मत के प्रतिकूल है। यह निर्णय लेने में कि क्या शूद्र आर्य थे या कि अनार्य मनुस्मृति के निम्नलिखित मंत्र ध्यान में देते योग्य हैं :–

''शूद्र स्त्री से उत्पन्न कन्या यदि ब्राह्मण के साथ विवाहित की जाए और आगे भी यही क्रम जारी रहे तो अपनी सातवीं पीढ़ी में नीच योनी से उद्धार पाकर ब्राह्मण हो जाती है।''

''जिस प्रकार कोई शूद्र ब्राह्मणत्व को और कोई ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रिय और वैश्यत्व को प्राप्त होता है।''

ब्राह्मण से इच्छापूर्वक (अविवाहित) शूद्र कन्या से और शूद्र से ब्राह्मण कन्या से (उत्पन्न पुत्र) इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है। ऐसी शंका पर –

ब्राह्मण पुरुष और शूद्र कन्या से उत्पन्न शूद्र पाकादि यज्ञ गुणों के युक्त होने के कारण श्रेष्ठ है। शूद्र पुरुष और ब्राह्मण कन्या से उत्पन्न पुत्र प्रतिलोमज होने के कारण अमर्यादित है। यही निर्णय है।

उपरोक्त श्लोक संख्या 64 जैसा ही श्लोक गौतम धर्म सूत्र (22) में भी है। इस श्लोक का ठीक अर्थ विवादास्पद है। इन विवादों के विषय में बुहलर का कथन है :–

''मेघ, गब, कुल्ल और राघ जैसे पाश्चात्य विद्धानों के अनुसार श्लोक का अर्थ है – यदि किसी ब्राह्मण की कन्या और शूद्र और उसके उत्तराधिकारी सभी किसी ब्राह्मण से विवाह करें तो छठी पीढ़ी के दंपत्ति ब्राह्मण माने जाएंगे। यद्यपि वह अर्थ हरदत्त की टीका से मिलता है, किंतु नार और नान ने बिल्कुल भिन्न व्याख्या की है। उनके अनुसार पारशव (शूद्र माता ब्राह्मण पिता की संतान) पुत्र अन्य श्रेष्ठ, गुणी, सचरित्र, पारशव कन्या से विवाह करता है और उसके उत्तराधिकारी भी ऐसा ही करते हैं तो छठी पीढ़ी में उत्पन्न संतान ब्राह्मण मानी जाएगी। नन्दन ने भी इस अर्थ को प्रमाणित माना है। बौद्धायान (1. 16.13.14) के अनुसार निषाद से निषादी द्वारा उत्पन्न संतान पांच पीढ़ी के पश्चात् शूद्रत्व से मुक्त हो जाती है या कोई इसे छठी पीढ़ी तक ले जा सकता है। मद्रास की एक नई पांडुलिपि में बौद्धायन के संबंध में लिखा है कि बौद्धायन ने ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से से उत्पन्न संतानों को आर्यों की श्रेणी में पहुंचाने की आज्ञा दी है। यह असंभव नहीं होगा कि मनुस्मृति के श्लोक का अर्थ यह भी हो सकता है । यदि ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से संतान उत्पन्न होती है तो वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पुरुष और पारशव स्त्री निम्न जाति सातवीं पीढ़ी में उच्च जाति में पहुंच जाती है।''

व्याख्या कोई भी हो किंतु तथ्य फिर भी स्पष्ट है कि सातवीं पीढ़ी में शूद्र परिस्थिति विशेष में ब्राह्मण हो सकता था। शूद्र यदि आर्य नहीं होते तो इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

अर्थशास्त्रियों के अनुसार शूद्र अनार्य नहीं थे। कौटिल्य का अर्थ शास्त्र इस संबंध में महत्वपूर्ण साक्ष्य है। इस प्रथा का उन्मूलन करते हुए कौटिल्य कहता है :–

''यदि कोई संबंधी किसी शूद्र को बेच या बंधक रख दे जो जन्मजात दास न रहा हो और वयस्क न हो गया हो और जन्म से आर्य हो तो विक्रेता संबंधी को बारह पण अर्थदंड देना पड़ेगा। किसी दास के आर्थिक धोखाधड़ी करने पर या आर्य (आर्यभव) के रूप में अधिकार न देने पर आशा अर्थदंड (किसी आर्य को गुलाम बनाने पर दिए जाने वाले दंड की अपेक्षा) देना होगा।

उपयुक्त राशि पर जाने के पश्चात् भी यदि कोई दास को मुक्त न करे तो उसको बारह पण अर्थ दंड देना होगा। अकारण किसी को बंदी बनाए रखने पर (सम्रोधास चकरामत) भी वही दंड देना होगा।

यदि किसी ने अपने को दास के रूप में बेच दिया हो तो उसकी संतान आर्य मानी जाएगी। दास

ने आपने स्वामी के कार्य में सहयोगी बन कर जितना धन अर्जित किया है वह सब उसके उत्तरदायी को दिया जाए।''

इस प्रकार कौटिल्य (चाणक्य) ने अपने अर्थशास्त्र में शूद्रों को स्पष्ट रूप से आर्य घोषित किया है।

यह कहना असत्य नहीं तो व्यर्थ अवश्य है कि आर्यों द्वारा दास बनाये गये लोग ही शूद्र कहलाये। इस संबंध में दो तर्क दिये जाते हैं। प्रथम तो ऋग्वेद में दासों को गुलाम दस्यु बताया गया है और दूसरा यह कि दास और शूद्र एक ही हैं।

यह सत्य है कि ऋग्वेद में शूद्र का दस्यु या सेवक के अर्थ में उल्लेख हुआ है। किंतु इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग केवल पांच बार हुआ है। इससे अधिक नहीं। साथ ही यदि यह पांच बार से अधिक प्रयुक्त भी हुआ तो क्या इससे यह सिद्ध होता है कि शूद्र ही दास बनाये गये ? जब तक कि सिद्ध नहीं होता कि ये दोनों (शूद्र और दास) एक ही थे तब तक ऐसा निर्णय करना कि शूद्र दास बनाये गये, मूर्खता होगी। यह ज्ञात तथ्यों के विरूद्ध भी होगी।

शूद्र क्षत्रिय राजाओं के राज्यभिषेक में सम्मिलित होते थे। उत्तरकालीन वैदिक ब्राह्मण काल में राजतिलक में जनता सम्राट को मुकुट धारण करती थी, तो वास्तव में राजा को प्रभुत्व प्रदान करता था। प्रजा के प्रतिनिधियों को ''रत्नी'' कहा जाता था क्योंकि उनके पास रत्न होते थे। राजा को प्रभुत्व तभी प्राप्त हो पाता था जब उसे प्रभुत्व के प्रतीक रत्न प्राप्त हो जाते थे। इसके पश्चात राजा प्रत्येक रत्नी के निवास स्थान पर जाकर उपहार देता था। यह उल्लेखनीय है कि रत्नियों में अनिवार्य रूप से एक शूद्र होता था।

''नीति मयूख के रचयिता नीलकंठ ने बाद के राज्यभिषेक के वर्णन किया है। इसके अनुसार चार वर्णों के मंत्री (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) नये राजा को राजमुकुट धारण कराते थे। तत्पश्चात सभी वर्णों और जातियों के लोग राजा के ऊपर पवित्र जल का अभिषेक करते थे और द्विज जय जयकार करते थे।

महाभारत में यह प्रमाण मिलता है कि युधिष्ठिर के राजतिलक समारोह में ब्राह्मणों के साथ शूद्र भी आमंत्रित किये गये थे।

प्राचीन काल में जनपद और पौर नामक दो परिषदें होती थी। इनमें शूद्र प्रतिनिधियों का ब्राह्मण भी विशेष रूप से सम्मान करते थे।

मनुस्मृति के अध्याय 4 श्लोक 61 तथा विष्णुस्मृति (21,64) के उस आदेश से कि ब्राह्मण शूद्र द्वारा शासित राज्य में रहे यह प्रमाणित हो जाता है कि शूद्र भी राजा होते थे। अन्यथा मनु का यह आदेश देना निरर्थक था।

महाभारत के शांतिपर्व में भीष्म ने (जो प्रत्येक जाति और वर्ण के प्रतिनिधित्व में विश्वास करते थे) युधिष्ठिर को यह राजनैतिक उपदेश दिया है :–

''राजा को चाहिए कि वेद विद्या के विद्वान निर्भीक, अंदर बाहर से स्नातक, चार ब्राह्मण, बलवान शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन धान्य से सम्पन्न इक्कीस वैश्य, पवित्र आचरण वाले विनयशील तीन शूद्र, पौराणिक ज्ञान संपन्न आठ गुणों युक्त एक सूत इन सबको मंत्रिमंडल में सम्मिलित करें।''

इससे यह सिद्ध होता है कि शूद्र मंत्री होते थे, और ब्राह्मणों की संख्या के बराबर ही प्रतिनिधित्व प्राप्त होते थे।

शूद्र नीच और दरिद्र नहीं होते थे। वे धनी होते थे। यह तथ्य मैत्रयानी संहिता (4–2–7–10) और पंचविश ब्राह्मण (1.11) से सिद्ध होता है।

इस प्रश्न के दो पहलू और हैं। यदि मान लिया जाये कि शूद्रों को दास बनाया गया तो प्रश्न उठता है कि शूद्रों को दास बनाने का क्या तात्पर्य था ? यदि आर्यों को दास बनाने का ज्ञान पूर्वकाल में न होता या वे आर्यों को दास बनाने के लिये तैयार न होते तभी उनका अभिप्राय स्पष्ट होता। किंतु तथ्य यह है कि आर्यों को दास बनाने का ज्ञान था और उन्होंने आर्यों में से भी दास बनाये। ऋग्वेद (7.86.7) (8.19.36) और (8.66.3) में स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि आर्यों ने अपने लोगों को भी दास बनाया। फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि उन्होंने विशेष रूप से शूद्रों को दास क्यों बनाया ? इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह कि शूद्र दासों के लिये उन्होंने पृथक विधानों की रचना क्यों की ?

निष्कर्ष यह है कि पाश्चात्य विचारक हमारे प्रश्नों का उत्तर देने में सहायक नहीं अथवा असमर्थ है कि शूद्र कौन थे और वे भारतीय आर्यों के समुदाय मे चतुर्थ वर्ण कैसे बने ?

साभार : बाबा साहेब डा. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड.मय खण्ड – 13
पृष्ठ सं. 77 से 88 तक

सामाजिक क्रान्ति के जनक महात्मा फुले

ज्योतिबा फुले को लोग अनेक विशेषणों से अलंकृत करते रहे हैं। कोई उन्हें आधुनिक भारत में सामाजिक क्रान्ति के जनक, कोई भारत के मार्टिन लूथर, कोई नारी के प्रथम मुक्तिदाता, तो कोई दलितों–शोषितों के आधुनिक युग के मसीहा के नाम से पुकारता है। उनकी षष्टी–पूर्ति के अवसर पर बम्बई में 11 नवम्बर, 1987 को एक अभूतपूर्व महती सभा में उन्हें महात्मा के पद से विभूषित किया गया था। महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ ने उक्त अवसर पर उन्हें बुकर टी वाशिगंटन का पदनाम देने का प्रस्ताव भेजा था। प्राचार्य प्री.के. अत्रे की महात्मा फुले नामक फिल्म के निर्माण का उद्घाटन करते हुये डॉ. बी.आर.अम्बेडकर ने ज्योतिबा की गणना भारत के महानता समाज सुधारको में की थी महात्मा गाँधी ने अपने पूना कारावास के दौरान 1933 में कहा था कि ज्योतिबा फुले सच्चे मायने में एक महात्मा थे।

ज्योति का जन्म सन् 1827 में पुणे के निकट एक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम गोविन्दराव और माता का चिमनाबाई था। ज्योति की शिक्षण 7 वर्ष की उम्र में आरंभ हुई। वे मराठी कोर्स समाप्त ही कर पाये थे कि उनके पिता ने किसी के बहकावे में आकर उन्हें स्कूल से हटा लिया। बाद में सन् 1841 में जब ज्योति की अवस्था 14 वर्ष की थी, अपनी गलती महसूस करके गोविन्दराव ने उन्हें फिर स्कूल में भर्ती करा दिया। सन् 1847 में इंग्लिश स्कूल की परीक्षा पास कर ज्योति जीवन में प्रवेश किये। उनका विवाह 14 वर्ष की अवस्था में एक 8 वर्षीय कन्या सावित्रीबाई से कर दिया गया था।

ज्योति अपनी जीवन दिशा ढूँढ़ने मे अभी व्यस्त ही थे कि एक घटना ने उनकी जिन्दगी की धारा ही पलट दी। एक ब्राह्मण मित्र के निमंत्रण पर वे उसके विवाह में सम्मिलित हुये थे। बारात में ब्राह्मण लोगों की पंक्ति में वे जा रहे थे कि किसी ने उन्हें पहचान लिया और सामाजिक नियम के उल्लंघन के अपराध के लिये उन्हें बहुत डाटा–फटकारा। वे बारात छोड़कर घर लौट आये और अपने पिता से अपनी मनोव्यथा कह सुनाई। पिता ने अनेक प्रकार से उन्हें सांत्वना देने की चेष्टा की। पर सब व्यर्थ गया। रात करवट लेते बीती। सुबह ज्योति बागी बन चुके थे। पुरातनता, रूढ़िवाद, सामाजिक, असमानता, धार्मिक व्यवस्था और शोषण से लोहा लेने के लिये वे कमर कस मैदान में आ कूद पड़े थे।

अपने 40 वर्ष से कुछ अधिक लम्बे जीवन में ज्योतिबा ने ऐसे अनेक काम किये जिन्हें पहले किसी भारतीय ने नही किया था वे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने सन् 1848 में अनुसूचित जातियों के बालक–बालिकाओं के लिये दो पाठशालाएं खोली। वहाँ बच्चे–बच्चियों की पढ़ाई तो मुफ्त होती थी उन्हें पोशाक और पाठ्य सामग्रियाँ भी मुफ्त दी जाती थी। इन पाठशालाओं के सफल संचालन पर ज्योतिबा ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। उनकी पत्नी सावित्री बाई, जो भारतीय नारियों में प्रथम सामाजिक कार्यकर्ती थी, उन स्कूलों में अवैतनिक पढ़ाती थी। अछूतों के लिये प्रथम पुस्तकालय खोलने का श्रेय भी उन्हीं को है।

दलित जातियों की स्थिति सुधारने के लिये ज्योतिबा ने कई अन्य कार्य किये उनकी समस्याओं की ओर सरकार और जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिये उन्होंने सन् 1885 में कैफियत शीर्षक से एक पुस्तिका लिखी। उन्हीं में से अनेक कर्मठ कार्यकर्त्ता भी तैयार किये। ज्योतिबा के सहयोगियों के नेतृत्व में बम्बई और अलीबाग नगर पालिकाओं के महार और भंगी समाज के मजदूरों ने जून, जुलाई और अक्टूबर सन् 1889 में हड़ताल की और वेतन वृद्धि और सेवामुक्त हड़ताली नेता की पुनः बहाली की वे अपनी माँग मनवाने में सफल हुये।

लड़कियों के लिये इस देश में प्रथम स्कूल कलकत्ता में सन् 1819 में और दूसरा बम्बई में सन् 1824 में खुले थे। पर ये मिशनरियों के प्रयास थे। ज्योतिबा लड़कियों के लिये पाठशाला खोलने वाले प्रथम भारतीय थे। उनका प्रथम स्कूल पुणे में जुलाई और दूसरा सितम्बर सन् 1851 में खुले। लड़कियों के लिये उनका प्रथम पुणे में जुलाई और मई सन् 1851 में खुले। लड़कियों के लिये उनका तीसरा स्कूल पुणे में ही मई सन् 1852 में खुला। इन स्कूलों के संचालन के लिये उन्होंने एक समिति का गठन कर दिया था। सावित्री बाई फुले ने आकर यही प्रधान अध्यापिका का काम संभाल लिया था। क्योंकि ज्योतिबा अपना अधिकांश समय वही लगा रहे थे। पाठशालाओं के लिये उपयुक्त मराठी पाठ्य सामग्री तैयार करने का काम भी उन्होंने हाथ में लिया था। इस काम के लिये उन्हें दक्षिण समिति से 75 रु0 मासिक का अनुदान भी प्राप्त हुआ था।

सन् 1848 और 1852 के बीच ज्योतिबा फुले ने 18 कन्या पाठशालाएं खोली, इनमें 6 पुणे नगर के भिन्न–भिन्न भागों में, 6 पुणे जिले के भिन्न भिन्न स्थानों पर, 3 सतारा जिलें में और 3 अन्य स्थानों पर। इस तरह उन्होंने कन्या पाठशाला खोलने का एक आन्दोलन चलाया था।

विधवाओं की हालत सुधारने के लिये ज्योतिबा ने अनेक ठोस काम किये। उन्होंने स्वयं कुछ विधवा विवाह भी कराये। विधवाओं की मुंडन जैसी निर्मम प्रथा की समाप्ति में उन्होंने महत्वपूर्ण हिस्सा लिया। पर पुणे जैसे रूढ़िवाद के गढ़ में गर्भिणी विधवाओं के लिये एक अनाथलय की स्थापना कर, जिस साहस और नैतिक बल का उन्होंन परिचय दिया वह बेजोड़

हैं। अनाथालय में गर्भिणी विधवाओं के लिये प्रसव की समुचित व्यवस्था थी और छूट थी कि वे चाहें तो अपने नवजात शिशु को वहीं छोड़ दें, या अपने साथ ले जायें। किसी भारतीय द्वारा स्थापित यह प्रथम अनाथालय था। ज्योतिबा का दत्तक पुत्र यशवन्त वहीं जनमें शिशुओं में से था। बाद में न्यायमूर्ति रानाडे के सहयोग से दूसरा अनाथालय पंडरपुर में सन् 1857 में स्थापित किया गया।

शिवाजी की गौरवगाथा और उपलब्धियों से आज सारा विश्व परिचित है। पर यह बहुत कम लोगों को मालूम हैं कि ज्योतिबा आधुनिक युग में शिवाजी को पुनः स्थापित करने वाले प्रथम भारतीय है। उन्होनें शिवाजी की राजधानी रायगढ़ की स्वयं यात्रा की और पत्थरों एवं सूखी पत्तियों के बीच दबी उनकी समाधि को ढूंढ़ निकाला। महाराष्ट्र के कोने–कोने में घूम कर शिवाजी की उपलब्धियों से लोगों को अवगत कराया। शिवाजी की जीवनी छन्दों में शीर्षक से 45 पन्ने की एक काव्य पुस्तक भी उन्होंने सन् 1869 में प्रकाशित की इसमें उन्होंने बताया है कि किस प्रकार मुगल सेनाका सफलतापूर्वक मुकाबला करके शिवाजी ने एक राज्य की स्थापना की। महिला बंदियों के प्रति शिवाजी के अनुपम आचरण, मराठा नाविक बेड़े के गठन में उनकी दूरदर्शिता, राजनीतिक सूझबूझ इत्यादि पर काव्य–पुस्तक में प्रकाश डाला गया है।

किसानों की समस्याओं के समाधान के लिये ज्योतिबा ने अनेक कार्य किये। शायद वे आधुनिक भारत के प्रथम भारतीय हैं जिन्होने किसान सत्याग्रह का संगठन और नेतृत्व किया। पुणे जिले के जुनार तालुका के किसान जमींदारों, महाजनों और सरकारी कर्मचारियों के शोषण और मनमानी से तंग आकर एक वर्ष तक खेत जोतना बन्द कर दिये। सत्याग्रह तभी समाप्त हुआ जब सरकारी अधिकारियों ने संघर्ष के संचालक ज्योतिबा से आकर सुलह की।

खेती में सुधार लाने के लिये ज्योतिबा ने अनेक रचनात्मक सुझाव रखे और कार्य किये। इस उद्देश्य से उन्होंने 'खेतिहरों का हीपकार्ड' नामक एक पुस्तक भी लिखी थी। खेती सम्बन्धी जो विचार इस पुस्तक के माध्यम से हमारे सामने आये हैं उसे पढ़कर आश्चर्य होता है। ज्योतिबा ने घाटियों और नदियों पर बान्ध बान्धने का सुझाव दिया है और इस काम में सेना से सहायता लेने की बात कहीं है। किसानों के बीच खेती की उन्नत प्रणाली के प्रचार के लिये प्रदर्शनी लगाने और सुधरे ढंग से की खेती करने और अधिक अन्न पैदा करने वाले किसानों को परितोषिक देने का सुझाव भी दिया है। उन्होंने यह भी बताया है कि सुधरे नस्ल की भेड़ और बकरियाँ बाहर से माँग कर किसानों को दी जानी चाहिये।

ज्योतिबा प्रचार में नहीं ठोस काम में विश्वास रखते थे। जब नवनिर्मित खड़गवासला नहर के पानी को अन्ध–विश्वास में डूबे किसान सिंचाई के लिये उपयोग करने से कतराते दिखे तो ज्योतिबा ने स्वयं 200 एकड़ जमीन खरीदी और उस पर उन्नत ढंग से खेती आरंभ कर दी। उनके बढ़ते हुये उपज को देख किसान स्वयं उसी प्रकार खेती करने और नहर के पानी का उपयोग करने लगे।

किसान आन्दोलन की भांति मजदूर आन्दोलन के प्रादुर्भाव में भी ज्योतिबा का बड़ा हाथ हैं। भारत में प्रथम मजदूर संगठन '' बम्बे मिलहैंड'' के संस्थापाक और प्रथम संगठित मजदूर आन्दोलन के संचालक भी एन.एम. लोखंडे ज्योतिबा के निकटतम सहयोगी और उनके सत्य शोधक समाज के प्रमुख सदस्य थे। ज्योतिबा प्रायः बम्बई जाते रहते और वहाँ के अपने प्रवास के दौरान वे मजदूर बस्तियों में जाते और मजदूरों को संगठित होने और अपने हकों के लिये संघर्ष करने के लिये प्रेरित करते थे।

ज्योतिबा के लेखन और कार्यों में सर्वाधिक प्रमुखता उस विद्रोह को मिली है जिसे उन्होंने जातिवाद, सामाजिक असमानता और धर्म के नाम पर आर्थिक दोहन के विरूद्ध खड़ी की थी। वे धार्मिक कर्मकांडों और उनमें ब्राह्मण की अनिवार्यता को नहीं मानते थे। रुढ़ीवादी पुरोहितों के वे कट्टर विरोधी थे। वेद तथा अन्य धर्मग्रथों को वे मानव कृति मानते थे। वे मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। वर्णव्यवस्था की उन्होंने खुलकर भर्त्सना की थी। वे ब्राह्मणों की सरकारी सेवाओं में भर्ती के विरोधी नहीं थे पर उनकी मांग थी कि उनकी संख्या उनकी जनसंख्या तक ही सीमित रहे। गुलामगिरी यानि ब्राह्मणवादी की आड़ में साम्राज्य में दासता (1873) नामक पुस्तक में उन्होंने अवतारवाद, जाति व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी धार्मिक सिद्धान्त को नकारा है ब्राह्मणों (आर्यों) के भारत आगमन पर क्षत्रियों के साथ उनके युद्धों और पराजय के बाद उनको शूद्र बनने के लिये बाध्य किये जाने के बारे में विस्तार से लिखा है। डॉ. बी.आर अम्बेडकर की भी मान्यता है कि आर्यों के भारत आगमन के समय यहाँ क्षत्रिय राजा थे जो युद्ध में हार कर वर्ण व्यवस्था में निम्न स्थान पर स्थान पाये। उनकी दूसरी पुस्तक पुरोहिती का पर्दाफाश (1869) में पुरोहित किस प्रकार यजमान का जन्म से मरण तक दोहन करता है प्रकाश डाला गया है। उनकी तीसरी पुस्तक सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक (मरणोपरान्त प्रकाशित) में उन्होंने अन्ध विश्वासों, रूढ़ियों, कर्मकांडों, धार्मिक अनुष्ठानों और दन्त कथाओं का जोरदार खंडन किया है और बताया है कि उनके अनुयायी कैसा आचरण और धार्मिक कार्य करें। ज्योतिबा को इन पुस्तकों और आन्दोलनों की प्रेरणा थामस पेन की मानव अधिकार नामक पुस्तक, अमेरीकी स्वातंत्रय संग्राम और अब्राहम लिंकन द्वारा अमेरीका में दासता के मूलोच्छेदन से मिली थी। उपरोक्त गुलामगिरी को उन्होंने नागरिकों को समर्पित किया है।

ऊंच–नीच, भेदभाव और अन्याय के विरूद्ध ज्योतिबा का संघर्ष उसी समय आरंभ हो गया था जब वे ब्राह्मण मित्र की बारात से अपमानित होकर लौटे थे। परिस्थिति को देखते हुये तरीके भिन्न हुये पर लक्ष्य बराबर एक रहा। सत्य शोधक समाज की स्थापना (24 दिसम्बर सन् 1873) के पूर्व का समय जनजागरण में लगा। इसके लिये ज्योतिबा ने महाराष्ट्र के दूर–दूर के स्थानों की यात्रायें की, और संघर्ष के लिये लोगों का आह्वान किया। इसके लिये उन्हें कड़े विरोध से गुजरना पड़ा। एक बार तो उनका काम तमाम कर देने के लिये उनके विरोधियों ने दो हत्यारे भी भेजे। पर हत्यारे भक्त बन कर लौटे।

ज्योतिबा तत्कालीन भारत में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति के कट्टर विरोधी थे। जिसमें उच्च वर्ग और जातियों की शिक्षण पर जोर था। उनका कहना था कि इसी शिक्षा नीति का दुष्परिणाम है कि प्रशासन के प्रायः सभी अंगों पर एक दो जातियों का प्रभुत्व हो गया है। वे बराबर जोर देते थे कि प्रशासन में सभी जातियों के लोग लिये जाने चाहिये।

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

दलितों और शूद्रों में आत्मसम्मान और आत्म निर्भरता की भावना भरना उनके आन्दोलन का एक प्रमुख अंग था। इसकी पुष्टि में उस विशाल जुलूस का जिक्र किया जा सकता है जिसे ज्योतिराव ने अप्रैल 1885 में पुणे नगर में आयोजित किया था महाराष्ट्र के विभिन्न भागों से आये लोग उसमें सम्मिलित हुये थे। न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे तथा कई गणमान्य लोगों ने भी उसमें भाग लिया था।

ज्योतिबा फुले के विचारों और कार्यों पर कई अक्षेप किये जाते हैं। कुछ का आरोप है कि उनके आन्दोलन पर ब्राह्मण विरोधी पुट था। ज्योतिबा के कुछ अनुयाईयों मे इस प्रकार की भावना हो सकती है। पर जब तक ज्योतिबा जीते रहे उन्होंने ब्राह्मणवाद और ब्राह्मण उनके कार्यों में बराबर साथ दिये।

यह भी कहा जाता है कि ज्योतिबा ब्रिटिश प्रशासन के पक्षपाती थे। इससे गलत बात दूसरी नही हो सकती। ब्रिटिश शासन में अछूतों तथा पिछड़े वर्गों के लोगों को पढ़ने–लिखने का अवसर प्राप्त हुआ था। ज्योतिबा कहते थे कि जब तक वह शासन में हैं इसका लाभ उठा लेना चाहिये। उनका दृढ़ मत था कि ब्रिटिश शासन बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। यही नहीं ब्रिटिश शासन को उसकी गलत शिक्षा नीतियों और आर्थिक शोषण के लिये उन्होंने कभी बक्शा नहीं।

एक दूसरी बात भी कहीं जाती है कि जिस प्रथा को ज्योतिबा दासता मानते थे वह पश्चिम में प्रचलित दासता से भिन्न थी। उस प्रकार की दासता किसी न किसी रूप में भारत में भी विद्यमान थी। जिस दासता का ज्योतिबा ने अपनी पुस्तक में जिक्र किया है वह निम्न वर्ग की मानसिक गुलामी, सामाजिक असमानता एवं धर्म के नाम पर शोषण है।

किसी भी व्यक्ति के कार्यों और विचारों का सही मूल्यांकन करने के लिये जरूरी है कि उनके देश और काल को ध्यान में रखा जाये। पुणे सदियों से रूढ़िवाद का गढ़ था। ज्योतिबा के समय में वहाँ दलितों और शूद्रों पर क्रूर प्रतिबन्ध लगे थे। जमीन्दारों, महाजनों और निम्न स्तर के सरकारी कर्मचारियों में, जो प्रायः सभी एक जाति विशेष के थे, आर्थिक शोषण के लिए सांठ–गांठ थी। ज्योतिबा ने वहाँ 21 वर्ष की आयु में संघर्ष के मार्ग पर पांव रखा और जीवन पर्यन्त आडिग चलते रहे।

28 नवम्बर सन् 1850 को रात्रि 1 बजे कर 40 मिनट पर लगभग 63 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ।

साभार : भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी
देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी
पृष्ठ सं. 122 से 126